Sociology Sem-I

Core - 1 Introduction to Sociology

Paper-1 Basic Concepts in Sociology

Unit-I : Nature, Scope and Significance and growth of Sociology Relationship with History, Economics, Political Sc, Anthropology and Psychology.

Unit-II Basic concepts: Sociology, Society, Community, Institution, Association, Social Structure, Culture

Unit III Social Groups & Processes: Definition Nature and Types of Groups - Primary, Secondry, in Group - out Group

Unit IV - Social institutions: Marrige, family, Economy, Polity, Kinship and Religion, Their function and features.

Unit-IV : Social stratification and forms Socialization, Social control, Social change and forms, modernization and Social mobility, Social process - Co-opretion, Assimilation, Comppetition.

दृष्टि से अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान है। Basic Concepts

समाजशास्त्र की आवश्यकता का अनुभव जटिल समाजों और विभिन्न सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए किया गया। धीरे-धीरे इस शास्त्र का महत्व बढ़ता ही गया। समाजशास्त्र के विकास के सम्बन्ध में **टी. बी. बोटोमोर** (Bottomore) ने लिखा है कि हजारों वर्षों से लोगों ने उन समाजों एवं समूहों का अवलोकन और चिन्तन किया है जिसमें वे रहते हैं। फिर भी समाजशास्त्र एक आधुनिक विज्ञान है और एक शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। **डान मार्टिण्डेल** (Don Martindale) ने बताया है कि यदि मानव प्रकृति से दार्शनिक है तो स्वभावतः वह समाजशास्त्री भी है क्योंकि सामाजिक जीवन उसका स्वाभाविक उद्देश्य है।[1] परन्तु समाज में रहने, सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने और सामाजिक जीवन में भागीदार बनने मात्र से व्यक्ति समाजशास्त्री नहीं बन जाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि यह समझने का प्रयत्न किया जाय कि वास्तव में समाजशास्त्र क्या है?

समाजशास्त्र 'समाज' का ही विज्ञान या शास्त्र है। इसके द्वारा समाज या सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। इस नवीन विज्ञान को जन्म देने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान **आगस्त कॉम्ट** (Auguste Comte) को है। आपने ही सर्वप्रथम सन् 1838 में इस नवीन शास्त्र को '**समाजशास्त्र**' (Sociology) नाम दिया। इसी कारण आपको '**समाजशास्त्र का जनक**' (Father of Sociology) कहा जाता है। समाजशास्त्र के प्रारम्भिक लेखकों में कॉम्ट के अलावा दुर्खीम, स्पेन्सर तथा मैक्स वेबर के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानों के विचारों का समाजशास्त्र के एक विषय के रूप में विकास में काफी योगदान है।

समाजशास्त्र की उत्पत्ति के मूल स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए **गिन्सबर्ग** (Ginsberg) ने लिखा है कि मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति राजनीतिक दर्शन, इतिहास, विकास के जैविकीय सिद्धान्त एवं उन सभी सामाजिक और राजनीतिक सुधार के आन्दोलनों पर आधारित है जिन्होंने सामाजिक दशाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक समझा।[2] स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति में राजनीतिक दर्शन, इतिहास, विकास के जैविकीय सिद्धान्त तथा सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार आन्दोलनों का योग रहा है। समाजशास्त्र की उत्पत्ति उन प्रयत्नों का परिणाम है जिनके द्वारा सामाजिक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के बीच पाये जाने वाले सामान्य आधार को ढूंढा गया।

1 Don Martindale, *The Nature and Types of Sociological Theory*, p. 3.
2 M. Ginsberg, *Reason and Unreason in Society*, p. 2.

समाजशास्त्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सम्बन्ध

[RELATION BETWEEN SOCIOLOGY AND OTHER SOCIAL SCIENCES]

समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
(MEANING AND DEFINITION OF SOCIOLOGY)

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि समाजशास्त्र दो शब्दों से मिल कर बना है जिनमें से पहला शब्द 'सोशियस' (Socius) लैटिन भाषा से और दूसरा शब्द 'लोगस' (Logas) ग्रीक भाषा से लिया गया है। 'सोशियस' का अर्थ है—समाज और 'लोगस' का शास्त्र। इस प्रकार 'समाजशास्त्र' (Sociology) का शाब्दिक अर्थ समाज का शास्त्र या समाज का विज्ञान है। **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने 'Sociology' के स्थान पर 'इथोलॉजी' (Ethology) शब्द को प्रयुक्त करने का सुझाव दिया और कहा कि 'Sociology' दो भिन्न भाषाओं की एक अवैध सन्तान है, लेकिन अधिकांश विद्वानों ने **मिल** के सुझाव को नहीं माना। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से **हरबर्ट स्पेन्सर** (Herbert Spencer) ने समाज के क्रमबद्ध अध्ययन का प्रयत्न किया और अपनी पुस्तक का नाम 'सोशियोलॉजी' रखा। सोशियोलॉजी (Sociology) शब्द की उपयुक्तता के सम्बन्ध में आपने लिखा है कि प्रतीकों की सुविधा एवं सूचकता उनकी उत्पत्ति सम्बन्धी वैधता से अधिक महत्वपूर्ण है। स्पष्ट है कि शाब्दिक दृष्टि से **समाजशास्त्र का अर्थ समाज (सामाजिक सम्बन्धों) का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन करने वाले विज्ञान से है।**

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि **समाजशास्त्र क्या है** तो विभिन्न समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोणों में भिन्नता देखने को मिलती है, लेकिन इतना अवश्य है कि अधिकांश समाजशास्त्री समाजशास्त्र को '**समाज का विज्ञान**' मानते हैं। समाजशास्त्र का अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर विचार व्यक्त किये हैं। उनके द्वारा दी गयी **समाजशास्त्र की परिभाषाओं को प्रमुखतः निम्नलिखित चार भागों में बांटा जा सकता** है:

(1) समाजशास्त्र समाज के अध्ययन के रूप में।

(2) समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन के रूप में।

(3) समाजशास्त्र समूहों के अध्ययन के रूप में।

(4) समाजशास्त्र सामाजिक अन्तःक्रियाओं के अध्ययन के रूप में।

अब इनमें से प्रत्येक पर हम यहां विचार करेंगे।

हम सबको घेरे है।''

स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में परस्पर चोली-दामन का साथ होते हुए भी उनमें पर्याप्त भिन्नता विद्यमान है।

3. समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र (Sociology and Economics)

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है, यह तथ्य इसी से स्पष्ट होता है कि अभी कुछ समय पूर्व तक समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र विषय के एक भाग के रूप में ही पढ़ाया जाता था। इतना ही नहीं, आज भी अनेक विश्वविद्यालयों में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के पृथक्-पृथक् विभाग नहीं हैं। इन दोनों विज्ञानों के सम्बन्ध निम्नलिखित विवेचना से और भी स्पष्ट हो जायेगा—

दोनों विज्ञानों में सम्बन्ध (Relation between the two Sciences)—यदि हम अर्थशास्त्र की परिभाषा करें तो हम इस शास्त्र को 'धन' का विज्ञान कह सकते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. मार्शल (Prof. Marshall) ने अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हुए कहा है कि **"अर्थशास्त्र मनुष्य के जीवन की साधारण व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है; अर्थशास्त्र यह मालूम करता है कि मनुष्य किस प्रकार से धनोपार्जन करता है और किस प्रकार उसे व्यय करता है? इस प्रकार अर्थशास्त्र एक ओर सम्पत्ति का अध्ययन और दूसरी ओर, जो अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"**[1] स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र, जैसा विदित है, मानव का समग्र रूप में अध्ययन करता है। कहना न होगा कि इस रूप में दोनों विज्ञानों में सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही है क्योंकि कोई भी आर्थिक सम्बन्ध सामाजिक दशाओं से अलग नहीं है, जैसे—यदि माँग के नियम (Law of Demand) को ही ले लिया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि इस नियम के पीछे अनेक सामाजिक तथ्य कार्य करते हैं, जैसे—किसी विशेष वस्तु की माँग इस बात पर आधारित होगी कि वह वस्तु विलासिता, सुखकर या आवश्यकता, कौन-से वर्ग में आती है? प्रथाओं एवं फैशन से उसका क्या सम्बन्ध है? आदि-आदि। कहना न होगा कि इन सभी तथ्यों का अध्ययन समाजशास्त्र ही करता है। श्री मैकाइवर (MacIver) ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि **''इस प्रकार से आर्थिक घटनाएँ सदैव सामाजिक आवश्यकताओं और क्रियाओं के समस्त स्वरूपों द्वारा निश्चित होती हैं और वे सदैव प्रत्येक प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं और क्रियाओं को पुनर्निश्चित, सृजित, रूपान्तरित एवं परिवर्तित करती हैं।''**[2] इतना ही नहीं, अनेक समाजशास्त्रीय समस्याएँ, जैसे—विवाह की समस्या, अपराध आदि भी आर्थिक क्रियाओं से प्रभावित रहती हैं। साथ ही, समाजशास्त्र अर्थशास्त्र की अध्ययन-पद्धतियों का लाभ भी उठाता है। इस प्रकर दोनों ही विज्ञानों को एक-दूसरे से सहायता लेनी पड़ती है।

---

1 "Economics is the study of man's actions in the ordinary business of life; it enquires how he gets his income and how he uses...Thus it is on the one side study of wealth and on the other and more important side a part of the study of man." —Marshall, *Economics of Industry*, p. 1.

2 "Thus economic phenomena are constantly determined by all kinds of social need and activity and in turn they are constantly re-determining, creating, shaping and transforming social need and activity of every kind." —MacIver, *Community : A Sociological Study*, pp. 50-51.

समाजशास्त्र में तृतीय अन्तर यह है कि समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत है, जबकि दर्शनशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र संकुचित है। अत: स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ठत: सम्बन्धित होते हुए भी एक नहीं हैं।

2. समाजशास्त्र और मनोविज्ञान (Sociology and Psychology)

मनोविज्ञान एक अन्य विज्ञान है जिसका समाजशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध सामाजिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति के बाद तो और भी घनिष्ठ हो गया है। आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि मनुष्य की सामाजिक क्रियाओं और अन्त:क्रियाओं पर पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों के अतिरिक्त उनका एक मनोवैज्ञानिक आधार होता है और इस आधार के बिना सामाजिक व्यवहारों को ठीक से नहीं समझा जा सकता। इसी कारण इन दोनों विज्ञानों में घनिष्ठता निरन्तर बढ़ ही रही है।

दोनों विज्ञानों में सम्बन्ध (Relation between the two Sciences)—मनोविज्ञान मनुष्य के मानसिक विचारों और अनुभवों का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में, यह मानव-स्वभाव या मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की बुद्धि, स्मृति, ध्यान, कल्पना, स्नायु प्रणाली, उसके मस्तिष्क की स्वाभाविकता और विकृति, उसका भय, आशा इत्यादि मानसिक तत्वों का अध्ययन होता है। सामान्य मनोविज्ञान (General Psychology) मनुष्य की सामाजिक अवस्था या अन्त:क्रियाओं से अपने को सम्बन्धित किए बिना ही उसके मानसिक विचारों और अनुभवों को समझने का प्रयत्न करता है परन्तु मानसिक प्रक्रिया भी इस अर्थ में सामाजिक है कि यह प्रत्येक पग पर व्यक्तियों की अन्त:क्रियाओं और सामाजिक पर्यावरण द्वारा प्रभावित और निश्चित होती है। दूसरी ओर ये सामाजिक शक्तियाँ और अन्त:क्रियाएँ व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं की ही उपज हैं अर्थात् हम मनुष्य के जीवन और समाज के जीवन को तब तक नहीं समझ सकते जब तक इन दोनों अर्थात् सामाजिक प्रक्रियाओं (social processes) तथा मानसिक प्रक्रियाओं का एक-दूसरे से सम्बन्धित रूप से अध्ययन न करें। इस सत्य के अनुभव करने के फलस्वरूप ही सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) का जन्म हुआ जो समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के बीच एक योग-सा बनकर इन दोनों विज्ञानों को परस्पर और भी निकट ले आया है। **श्री क्लाइनबर्ग (Klienberg) के शब्दों में, "सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो एक-दूसरे से सम्बन्धित व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करता है। इसका सम्बन्ध सामूहिक परिस्थिति में व्यक्ति से है।"**[1] दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के 'व्यक्ति' और समाजशास्त्र के 'समाज' के सम्बन्धों की व्याख्या है। इसी से इन तीनों विज्ञानों का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट है। मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान दोनों का ही सम्बन्ध मनुष्य से ही है जो समाज के समूह का एक सदस्य है। सम्भवत: इसी कारण इनको एक-दूसरे से पृथक् करना कठिन है। इस सम्बन्ध में **श्री मैकाइवर (MacIver)** का कथन है कि **"समाजशास्त्र विशेष रूप से मनोविज्ञान को सहायता देना है जिस प्रकार मनोविज्ञान समाजशास्त्र को विशेष सहायता देता है।"**[2] वास्तव में मनोविज्ञान को मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए समाजशास्त्रीय ज्ञान पर निर्भर होना पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवहारों, सम्बन्धों और अन्त:क्रियाओं की वास्तविकता समाजशास्त्री को मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर समझनी होती है और सामाजिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में प्रवेश कराकर जो ज्ञान प्राप्त करता है, उससे सामान्य मनोविज्ञान और समाजशास्त्र दोनों को ही लाभ होता है।

दोनों विज्ञानों में अन्तर (Distinction between the two Sciences)—उपर्युक्त विवेचना से यह समझ लेना उचित न होगा कि मनोविज्ञान और समाजशास्त्र में कोई अन्तर नहीं है। वास्तव में इन दोनों विज्ञानों के मौलिक दृष्टिकोण और अध्ययन-वस्तु में काफी अन्तर है। दोनों शास्त्रों में **प्रथम अन्तर** यह है कि समाजशास्त्र का मौलिक सम्बन्ध समाज और सामाजिक प्रक्रियाओं से है, जबकि मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति और उसकी मानसिक प्रक्रियाओं से हैं। मनोविज्ञान की धुरी व्यक्ति है, समाजशास्त्र की समाज या समूह। इन दो विज्ञानों में द्वितीय अन्तर दृष्टिकोणों का है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का आधार स्वयं मनुष्य की ही

आधारभूत अवधारणाएँ : समाज

[BASIC CONCEPTS : SOCIETY]

जाल है।"

—मैकाइवर तथा पेज

है। वास्तव में, समाज ही उसके सामूहिक जीवन का प्रतीक है

सम्बन्धों के

करते हुए

संकल्पना

की विस्तृ

"समाज

S

स

सदस्य

मिलता

समाजश

यह है कि समाजशास्त्रीय नियम सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित होते हैं, जबकि अर्थशास्त्र के नियमों में आर्थिक क्रियाओं को आधार माना जाता है।

4. समाजशास्त्र और मानवशास्त्र (Sociology and Anthropology)

समाजशास्त्र और मानवशास्त्र एक-दूसरे के अत्यधिक निकटवर्ती सामाजिक विज्ञान हैं। दोनों का सम्बन्ध निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा-

दोनों विज्ञानों का सम्बन्ध (Relation between the two Sciences)—समाजशास्त्र और मानवशास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही विज्ञानों की अध्ययन-वस्तु 'समाज' है। समाजशास्त्र 'सभ्य समाज' का अध्ययन है और मानवशास्त्र 'आदिम समाज' (Primitive Society) का। सम्भवतः इसलिए श्री हॉबल (Hoebel) का कहना है कि "**विस्तृत अर्थों में समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र बिल्कुल समान एवं एक हैं।**"[1] **श्री क्रोबर** (Krober) ने तो इन दोनों शास्त्रों को जुड़वाँ बहनें (twin sisters) कहा है।

मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का सम्बन्ध और भी स्पष्ट करने के लिए मानवशास्त्र के तीन प्रमुख भागों से समाजशास्त्र का सम्बन्ध दिखाया जा सकता है। मानवशास्त्र का प्रथम भाग **भौतिक मानवशास्त्र** (Physical Anthropology) है जो मनुष्य के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन करता है। यह शास्त्र आदिम मानव की उत्पत्ति एवं शारीरिक विशेषताओं का गूढ़ (intensive) अध्ययन करता है। समाजशास्त्र इन सभी अध्ययनों का लाभ उठाता है। मानवशास्त्र का द्वितीय प्रमुख भाग **प्रागैतिहासिक मानवशास्त्र** (Prehistoric Anthropology) है जो प्रागैतिहासिक युग की संस्कृतियों, सभ्यताओं व कलाओं का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र प्राचीन सभ्यता, संस्कृति आदि का अध्ययन करके उसके आधार पर वर्तमान सामाजिक ढाँचे का विश्लेषण करता है। मानवशास्त्र का तृतीय भाग, सम्भवतः जो समाजशास्त्र के अत्यधिक निकट है, **सामाजिक मानवशास्त्र** (Social Anthropology) कहलाता है। सामाजिक मानवशास्त्र वास्तव में आदिम सामाजिक परिस्थितियों में मनुष्य के समाज व संस्कृति का अध्ययन करता है अर्थात् इस शास्त्र के अन्तर्गत आदिम समाजों के सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। दूसरी ओर, समाजशास्त्र सभ्य समाजों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करता है और इस रूप में दोनों ही विज्ञान एक-दूसरे के अत्यधिक निकट हैं। दोनों ही एक-दूसरे की सहायता करते हैं। श्री कीसिंग (Keesing) का कथन अनुचित नहीं है कि "**सामाजिक मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र के बीच का क्षेत्र घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, दोनों प्रबल रूप से सामूहिक व्यवहार के वैज्ञानिक सामाध्यीकरण से सम्बन्धित हैं।**"[2]

दोनों विज्ञानों में अन्तर (Distinction between the two Sciences)—समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी कुछ मौलिक भेद हैं। **प्रथम भेद** यह है कि समाजशास्त्र वर्तमान समाज का अध्ययन करता है, जबकि मानवशास्त्र विशेषतः आदिम समाजों का अध्ययन करता है। **द्वितीय भेद** दृष्टिकोण का है। समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का अध्ययन सामाजिक दृष्टिकोण से करता है, जबकि मानवशास्त्र का दृष्टिकोण सांस्कृतिक होता है। इसका अधिक ध्यान मानव तथा संस्कृति की उत्पत्ति एवं विकास

1 "Sociology and Social Anthropology are, in their broadest senses, one and the same."
—E.A. Hoobel, *Man in the Primitive World*, p. 6.

2 "The area of close relation is between Social Anthropology and Sociology, both being strongly concerned with scientific generalization on group behaviour."
—Keesing, *Cultural Anthropology*, 1958, p. 8.

सम्बन्धों के इस व्यवस्थित स्वरूप को ही समाजशास्त्र में 'समाज' कहा जाता है। समाज के इसी अर्थ की चर्चा करते हुए सर्वश्री मैकाइवर और पेज ने लिखा है कि "समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।"[1] समाज की संकल्पना या अवधारणा को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए सर्वश्री मैकाइवर और पेज के इस कथन की विस्तृत विवेचना आवश्यक है।

"समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल या व्यवस्था है" (Society is the Web or System of Social Relationships)

सम्बन्धों के जाल का अभिप्राय सामाजिक सम्बन्धों की उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत समाज के सभी सदस्य एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हो जाते हैं कि उनके जीवन में सम्बन्धों का एक ताना-बाना देखने को मिलता है। यह ताना-बाना सामाजिक जीवन में पारस्परिक सम्बन्धों के एक जटिल जाल की सृष्टि करता है जिसे समाजशास्त्र में हम 'समाज' कहते हैं। इस रूप में **समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।**

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, इस कथन को एक अन्य रूप में समझाया जा सकता है। हम सभी सामाजिक प्राणी हैं और सामाजिक प्राणी के रूप में हमारी अनेक आवश्यकताएँ हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हम स्वयं अकेले नहीं कर सकते। इसलिए हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों की मदद या सहयोग की जरूरत होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर समाज के सदस्य परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाते हैं। वास्तव में यह सम्बन्ध विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के आधार पर स्थापित होता है, जैसे आर्थिक आवश्यकता, यौन-सम्बन्धी आवश्यकता, धार्मिक आवश्यकता, राजनीतिक आवश्यकता, परिवार सम्बन्धी आवश्यकता, इत्यादि। इनमें से प्रत्येक प्रकार की आवश्यकता एक विशेष प्रकार के सम्बन्ध को जन्म देती है, जैसे एक व्यक्ति को यदि धन कमाने की आवश्यकता है तो इस आर्थिक आवश्यकता के कारण उसे किसी दफ्तर में काम करना पड़ता है। इस काम को करने पर उसका सम्बन्ध उस दफ्तर के अन्य लोगों से स्वतः ही स्थापित हो जाता है। यह सम्बन्ध आर्थिक सम्बन्ध कहलाएगा। इसी प्रकार घर बसाने की आवश्यकता परिवार का जन्म देती है, जिससे सदस्य स्वतः ही एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक युवती या युवक घर बसाना चाहता है तो वह इस आवश्यकता की पूर्ति अकेले करने में सक्षम नहीं है। इसके लिए उसे दूसरे पक्ष (पुरुष या स्त्री) से सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ेगा। इस आवश्यकता के कारण ही एक युवक और युवती परस्पर विवाह-सम्बन्ध में बँध जाते हैं और उनमें वैवाहिक सम्बन्ध या पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक युवक विवाह के बाद केवल पति ही नहीं होता है, बल्कि पत्नी के परिवार के दूसरे सदस्यों के साथ उसका जीजा, फूफा, दामाद, बहनोई आदि का सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। उसी प्रकार युवती भी केवल पत्नी ही नहीं होती है, वरन् वह किसी की भाभी, चाची, मामी, सलैज, बहू आदि भी होती है।

इस प्रकार सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की कुछ राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक, शैक्षिक आदि आवश्यकताएँ भी होती हैं जिनकी पूर्ति के लिए उसे दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पड़ते हैं और इसीलिए प्रत्येक सामाजिक प्राणी (मनुष्य) के जीवन में असंख्य सम्बन्धों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। यदि समाज में सभी व्यक्तियों के जीवन में पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों के इन ताने-बाने जाल को सम्मिलित रूप में देखा जाए, तो कल्पना कीजिए कि सम्बन्धों का कितना बड़ा जाल-सा बन जाएगा? सम्बन्धों का यह जाल ही समाज का निर्माण करता है पर यह जाल अनियन्त्रित नहीं होता, अपितु बहुत-से लिखित व अलिखित सामाजिक नियमों, लोकाचारों व परम्पराओं द्वारा नियन्त्रित व व्यवस्थित होता है। सामाजिक सम्बन्धों के इसी जटिल किन्तु व्यवस्थित स्वरूप को समाज कहते हैं। इसी बात की पुष्टि करते हुए। **प्रो. डेविस** ने लिखा है कि "यह याद रखने योग्य बात है कि केवल सामाजिक सम्बन्धों का ढेर ही समाज नहीं होता। जब सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था पनपती है तभी हम उसे समाज कहते हैं।"

समाज की परिभाषा (Definition of Society)

[illegible]

विचार करें।

समाजशास्त्र में 'समाज' का अर्थ (Meaning of 'Society' in Sociology)

हम यह जानते ही हैं कि समाजशास्त्र (समाज + शास्त्र) 'समाज' का ही शास्त्र या विज्ञान है। इसीलि[illegible] समाजशास्त्र 'समाज' शब्द का प्रयोग ढीले-ढीले या मनमाने अर्थ में न करके एक निश्चित व यथार्थ अर्थ [illegible] करता है। वास्तव में, साधारण अर्थ में 'समाज' शब्द से व्यक्तियों (अर्थात् समाज के सदस्यों) के किसी संगठन [illegible] बोध होता है पर समाजशास्त्र में 'समाज' से व्यक्तियों का नहीं, अपितु उनके बीच पाए जाने वाले पारस्परि[illegible] सम्बन्धों की एक समग्र व्यवस्था का बोध होता है। अति सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि समाजशास्[illegible] 'समाज' की विवेचना करते समय व्यक्तियों के किसी समूह विशेष से अपने को सम्बन्धित नहीं करता, बल्कि य[illegible] मानकर चलता है कि समाज एक व्यवस्था है और इस व्यवस्था का निर्माण व्यक्तियों के बीच पाए जाने वा[illegible] असंख्य सम्बन्धों के संगठन के फलस्वरूप होता है। दूसरे शब्दों में, समाज के सदस्यों के बीच पाए जाने वा[illegible] पारस्परिक सम्बन्धों की व्यवस्था को ही हम '**समाज**' कहते हैं। वैसे भी यदि देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि केवल अनेक व्यक्तियों के होने मात्र से ही समाज की रचना नहीं हो जाती; 'समाज' तो तब बनता है जब उसके सद[illegible] आपस में एकाधिक सम्बन्धों को स्थापित कर लेते हैं और उन सम्बन्धों के आधार पर एक-दूसरे से बँध जाते हैं

समुदाय की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ

[illegible]

[illegible]

1. [illegible] (Common Way of Life)– [illegible] सामान्य उद्देश्य होता है और इसीलिए [illegible] आदि भी लगभग सामान्य ही होता है।

2. विशिष्ट नाम (Special Name)–समुदाय की दूसरी प्रमुख विशे[illegible] समुदाय का कोई नाम अवश्य होता है। वास्तव में इसी नाम के सन्दर्भ [illegible] एकता का उदय होता है। श्री लूम्ले ने इसी नाम के महत्व का वर्णन [illegible] की ओर संकेत करता है, वास्तविकता को प्रदर्शित करता है, वह वि[illegible] व्यक्तित्व को वर्णित करता है–और प्रत्येक समुदाय किसी-न-किसी [illegible]

3. स्थायीपन (Permanancy)–समुदाय की तीसरी विशेषता उसका स्थायीपन [illegible] नहीं होता, समुदाय नहीं कहा जा सकता। स्थायीपन का यहाँ तात्पर्य भौगोलिक [illegible] सदस्य एक ही स्थान पर बहुत दिनों से रहते हों। भीड़, समूह या खानाबदोसी झुण्ड [illegible] नहीं आते। वास्तव में एक स्थिर पहाड़ की भाँति ही समुदाय का अस्तिव होता है।

4. स्वत: उत्पत्ति (Spontaneous Birth)–स्वत: उत्पत्ति भी समुदाय की [illegible] यह है कि समुदाय किसी मानवीय प्रयायों का परिणाम नहीं होता बल्कि [illegible] प्राकृतिक विकास (natural growth) होता रहता है। मनुष्य एक परिवार [illegible] समुदाय का सदस्य भी होता है। सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति [illegible] पर बसते हैं। उनमें 'हम की भावना' विकसित होने पर वह समुदाय [illegible]

5. सामान्य नियम (Common Rules)–प्रो. जिन्सबर्ग ने समुदाय की एक [illegible] अनुसार प्रत्येक समुदाय में नियमों की एक सामान्य व्यवस्था होनी आव[illegible] "समुदाय का अर्थ उस समस्त जनसंख्या से है, जो किसी एक क्षेत्र में रहती हो और [illegible] नियमों की एक सामान्य व्यवस्था से बँधी हुई हो।"

6. आत्मनिर्भरता (Self-sufficiency)– [illegible]

[illegible]

[illegible]

समुदाय
[COMMUNITY]

प्रकार की
(commu
परिभाषा
स्पष्टतः '
रही है कि
किया है,
उ
की पूर्ति

श्री रॉस (Ross) के अनुसार, "सामाजिक संस्थाएँ सर्वमान्य इच्छा द्वारा सुस्थापित या स्वीकृत संगठित मानव-सम्बन्धों के समूह हैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रमुख मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज द्वारा निश्चित व मान्य साधनों या कार्य-प्रणालियों को ही संस्था कहते हैं।

संस्था की उत्पत्ति (Origin of Institution)

संस्था का विकास या उत्पत्ति एकाएक या एक दिन में नहीं होती है। इसका विकास धीरे-धीरे अनेक दिनों में हुआ करता है। संस्था चूँकि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का एक स्थायी तरीका है, अतः किसी आवश्यकता की पूर्ति के सन्दर्भ में एक विचार सबसे पहले किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में आता है, जब वह व्यक्ति उस विचार या उपाय को बार-बार सफलतापूर्वक प्रयोग में लाता है तो वह उसकी आदत बन जाती है, जब अन्य व्यक्ति भी उस व्यक्ति की आदत का अनुसरण करते हैं तो वह जनरीति कहलाती है, जब यह जनरीति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है तो इसको प्रथा कहा जाता है। इस प्रथा में कल्याण की भावना जुड़ने पर यह रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है। इस सामाजिक कल्याणकारी रूढ़ि की रक्षा करने के लिए इसके चारों ओर नियमों, कार्य-विधियों आदि का एक प्रकार का ढाँचा-सा बन जाता है। नियमों, कार्य-विधियों और स्वीकृत साधनों का यह ढाँचा ही संस्था के नाम से पुकारा जाता है।

संस्था के आवश्यक तत्व या विशेषताएँ (Necessary Elements or Characteristics of Institution)

संस्था की कुछ विशेषताएँ या तत्व इस प्रकार हैं–

(1) **एक विचार**–संस्था का सर्वप्रथम आवश्यक तत्व यह है कि इसमें 'एक विचार' का आना अनिवार्य है। मनुष्य जब किसी आवश्यकता की पूर्ति का उपाय सोचने का प्रयत्न करता है तो सबसे पहले उसके मस्तिष्क में एक विचार की उत्पत्ति होती है जो अन्य स्तरों से गुजरकर संस्था का रूप धारण करता है।

(2) **विरासत**–संस्था एक दिन में नहीं बन जाती है, इसके बनने में काफी समय लग जाता है। जब एक विधि या तरीका सामूहिक तौर पर स्वीकृत होता है और वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है, तब कहीं वास्तव में संस्था का रूप स्पष्ट होता है।

(3) **विशिष्ट उद्देश्य**–संस्था की एक अन्य प्रमुख विशेषता 'एक विशिष्ट उद्देश्य' है। बिना किसी विशिष्ट उद्देश्य के संस्था की कल्पना भी नहीं की जाती। किसी उद्देश्य के होने पर ही उस सम्बन्ध में उपाय सोचे जाते हैं और तब कहीं संस्था का विकास होता है।

(4) **सामूहिक स्वीकृति**–यह भी संस्था की एक अति महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसको समूह या समाज की स्वीकृति प्राप्त हो। बिना सामूहिक स्वीकृति के संस्था बन ही नहीं सकती।

(5) **नियमों का ढाँचा**–संस्था की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि प्रत्येक संस्था के पीछे नियमों, कार्य-प्रणालियों, व्यवस्थाओं आदि का ढाँचा होता है जिससे संस्था की रक्षा की जाती है, उसे कार्य-रूप में परिणित भी किया जाता है।

(6) **अधिक स्थायित्व**–चूँकि कोई भी संस्था एक ही दिन में नहीं बन जाती, इसी कारण एक दिन में वह नष्ट भी नहीं हो सकती। वास्तव में एक संस्था के निर्माण में कई पीढ़ियों का समय लग जाता है। इस बीच संस्था के साथ अनेक परम्पराएँ जुड़ जाती हैं। इन परम्पराओं के कारण ही संस्था में अधिक स्थायित्व आ जाता है।

(7) **सामूहिक प्रयत्न**–संस्था किसी एक विशेष व्यक्ति पर निर्भर नहीं होती। दूसरे शब्दों में, संस्था का बनना या बिगड़ना किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं होता, इसके लिए सामूहिक प्रयत्नों की आवश्यकता होती है।

(8) **प्रतीक**–संस्था का अन्तिम आवश्यक तत्व या विशेषता यह है कि प्रत्येक संस्था का अपना एक प्रतीक होता है। यह प्रतीक भौतिक या अभौतिक दोनों ही रूप में हो सकता है। जैसे–विवाह संस्था का प्रतीक हिन्दुओं में 'मंगल-कलश' या 'मढवा' आदि होता है।

संस्थाओं के सामाजिक कार्य या महत्व (Social Functions or Importance of Institutions)

सर्वश्री गिलिन और गिलिन (Gillin and Gillin) के अनुसार संस्थाओं के सामाजिक कार्य निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

(1) **मानव-व्यवहारों का नियन्त्रक**–संस्थाएँ मानव-व्यवहारों के नियन्त्रक के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण रही हैं। चूँकि संस्थाओं को सामूहिक अभिमिति प्राप्त होती है, अतः जल्द ही इनका कोई उल्लंघन नहीं कर पाता।

इस प्रकार [illegible] की जाती है। [illegible] समुदाय के अन्तर्गत स्थापित की जाती है। [illegible] यह कथन उचित है कि "एक समिति एक समुदाय नहीं है बल्कि समुदाय के अन्तर्गत एक संगठन है।"[1]

संस्था
(INSTITUTION)

संस्था का अर्थ व परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Institution)

मनुष्य की आवश्यकताएँ असंख्य हैं। इनमें से कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जो जन-कल्याण [illegible] के अस्तित्व के लिए आवश्यक होती हैं। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति मनमाने ढंग से की जाय तो कुछ [illegible] में सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी। इसी दृष्टिकोण से समाज इन आवश्यकताओं की पूर्ति के [illegible] कुछ ऐसे निश्चित साधन या कार्य-प्रणालियाँ निश्चित करता है जो लोगों को मान्य हों। समाज के सदस्य [illegible] आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्हीं साधनों, कार्य-विधियों या तरीकों को अपनाते हैं। इस प्रकार ये [illegible] कार्य-विधियाँ या साधन पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते रहते हैं। इन्हीं स्वीकृत विधियों, तरीकों, कार्य-प्रणालियों [illegible] 'संस्था' कहा जाता है या दूसरे शब्दों में, संस्था कार्य करने के ढंगों या नियमों की एक व्यवस्था है। उदाहरणार्थ, [illegible] इच्छा की पूर्ति का स्वीकृत तरीका विवाह है, शिक्षा प्राप्त करने की स्वीकृत कार्य-प्रणाली शिक्षालय व्यवस्था है। [illegible] सभी संस्था के ही उदाहरण हैं।

सर्वश्री मैकाइवर और पेज (MacIver and Page) ने संस्था की परिभाषा देते हुए लिखा है–"संस्थाएँ [illegible] सामूहिक क्रिया की विशेषता बताने वाली कार्य-प्रणाली के सुस्थापित रूप या अवस्थाएँ होती हैं।"[2]

श्री बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में, "एक सामाजिक संस्था समाज की एक ऐसी संरचना है [illegible] जिसे मुख्यतः सुव्यवस्थित प्रणालियों के माध्यम से लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया गया हो।"[3]

---

1 "An association is not a community but an organization within a community."
—MacIver and Page, *Ibid*, p. [illegible]

2 "Institution are the established forms or conditions of procedure characteristics of group activity."
—*Ibid*., p. [illegible]

3 "A social institution is a structure of society that is organized to meet the needs of people chiefly through well established procedures."
—Bogardus, *op. cit*., p. [illegible]

... जैसे अन्य द्वितीयक समूहों के द्वारा होता है।

प्राथमिक व द्वितीयक समूहों में अन्तर

(DISTINCTION BETWEEN PRIMARY AND SECONDARY GROUPS)

प्राथमिक और द्वितीयक समूहों में पाए जाने वाले अन्तर को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) **प्राथमिक समूहों** का आकार छोटा होता है। श्री कूले के अनुसार प्राथमिक समूहों में सदस्यों की संख्या प्राय: दो से लेकर पचास या साठ तक होती है। इसके विपरीत **द्वितीयक समूहों** का आकार बड़ा होता है, यह उसकी एक प्रमुख विशेषता है। इन समूहों में सदस्यता की कोई सीमा नहीं होती है। इस कारण इनमें सदस्यों की संख्या एक सौ भी हो सकती है और एक लाख भी।

(2) **प्राथमिक समूहों** के सदस्यों के सम्बन्ध आमने-सामने के, घनिष्ठ व व्यक्तिगत होते हैं तथा उनके सदस्यों में 'हम' की भावना, सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, प्रेम व प्रीति पाई जाती है। इसके विपरीत, द्वितीयक